Ved International Journal of Arts, Commerce and Technology (VIJACT)
© VIJACT |Vol.2, Issue4, Apr. 2026, pp. 01-06 | ISSN: 3139-1656 (Online)
DOI: https://doi.org/10.65785/vijact.v2i4.30
Available online at: https://vijact.com/

अग्निविद्या की वैदिक मीमांसा: आरम्भिक योग साधना के परिप्रेक्ष्य में

डॉ. अखिलेश कुमार विश्वकर्मा [1] एवं डॉ. उपेन्द्र बाबू खत्री [2]

[1] सहायक प्राध्यापक (अष्टांग योग विभाग) लकुलीश योग विश्वविद्यालय, गुजरात

[2] सहायक प्राध्यापक (योग विज्ञान विभाग) साँची बौद्ध-भारतीय ज्ञान अध्ययन विश्वविद्यालय, साँची (मध्य प्रदेश)

[1] **Email:** akhilhariom123@gmail.com

[2] **Email:** upendra.khatri@subis.edu.in

Article Info

Article history:

Received Apr 05, 2026

Accepted Apr 15, 2026

Published Apr 30, 2026

मुख्य शब्द:

अग्नि

अग्निदेवता

वैदिक मीमांसा

योगाग्नि

अग्नि उपासना

अग्निविद्या

ABSTRACT

भारतीय संस्कृति हमेशा प्रकृति पूजक रही है। जिसमें प्रतीक उपासना का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। वेदों में पृथ्वी स्थानीय देवताओं में अग्निदेवता को प्रथम एवं प्रमुख स्थान प्राप्त है। यजुर्वेद के प्रमुख देवता अग्निदेवता ही हैं। अग्नि का देवत्व चारों वेदों की संहिताओं, ब्राह्मणों, आरण्यकों, उपनिषदों एवं पुराणों आदि में प्रतिष्ठित है। ऋग्वेद का प्रथमसूक्त अग्नि-सूक्त अग्निदेवता के वैशिष्ट्य को स्पष्टतः प्रतिपादित करता है। वैदिक साहित्य में अग्निदेवता की विविध उपमाओं से स्तुति की गई है। शतपथ ब्राह्मण अग्निदेवता को समस्त देवताओं की आत्मा से विभूषित करता है। अग्नि ही वह माध्यम है जिसके द्वारा मनुष्य देवताओं को अपनी भावनाओं सहित भोज्य पदार्थ प्रेषित करते हैं। अग्नि से मनुष्य का आजीवन सम्बन्ध रहता है। अग्नि उपासना इस सम्बन्ध को और अधिक प्रगाढ़ता प्रदान करती है। अग्नि के समस्त प्रकार, प्रयोग, प्रयोजन एवं अग्नि उपासना की प्रविधियों का ज्ञान ही अग्निविद्या कहलाती है। जिसके अनुष्ठान से साधक अपने जीवन के परम साध्य को प्राप्त करता है। इसीलिए आत्मसाधना में रत योगियों के लिए अग्निविद्या को समझना एवं अग्नि उपासना करना और अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है। योगाग्नि से तप्त एवं अग्नि उपासना से युक्त साधक समस्त क्लेशों, दोषों, विक्षेपों से मुक्त होकर परम गति को प्राप्त होता है। योग साधकों के लिए अग्नि परम गुरू की भूमिका में समस्त दोषों का हरण और शक्ति का वरण प्रदान करने वाली होती है। इसलिए अग्निविद्या को जानकर समस्त योग साधक को नित्यप्रति अग्नि उपासना करनी चाहिए। अतः यह शोध-पत्र वैदिक सन्दर्भों के अनुरूप यौगिक जीवन में अग्निविद्या की महत्ता का प्रतिपादन करता है।

This work is licensed under a Creative Commons Attribution-NonCommercial 4.0 International License.

Corresponding Author:
डॉ. अखिलेश कुमार विश्वकर्मा
Email: akhilhariom123@gmail.com

1. प्रस्तावना

अग्ने नय सुपथा राय। (*यजुर्वेद- 40.16*)

भारतीय वैदिक वाङ्मय एवं दर्शन परम्परा में प्रकृति को जहाँ एक ओर जड़, अचेतन एवं बंधन का कारण माना गया है तो वहीं दूसरी ओर उसी प्रकृति को चेतन, शक्ति का प्रतीक एवं मोक्ष का हेतु माना गया है। प्रकृति अथवा सृष्टि को ईश्वर की कृति मानकर सृष्टि के प्रत्येक पदार्थ को '***जड़ं न क्वचिद्***' कहा गया है। इस सूत्र ने सृष्टि के प्रत्येक पदार्थ को चेतन से युक्त कर दिया है। सृष्टि शक्ति एवं मुक्ति का स्रोत है

इसीलिए भारतीय संस्कृति में सृष्टि के प्रत्येक पदार्थ का दैवीयकरण एवं मानवीकरण देखने को मिलता है। भारत में हमेशा से सृष्टि के समस्त तत्वों यथा- पर्वत, पहाड़, नदी, वृक्ष, पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, आकाश, सूर्य, चन्द्र, लोक आदि पूजनीय रहे हैं। वेदों में प्रकृति के इन्हीं तत्वों को देवता से सम्बोधित कर स्तुति की गई है। इन्हीं देवताओं में एक महत्वपूर्ण एवं इन्द्र के बाद द्वितीय स्थान पर अधिष्ठित देवता अग्निदेवता हैं। यजुर्वेद में अग्नि को सर्वप्रमुख देवता के रूप में मानकर स्तुति की गई है। अग्निदेवता की स्तुति अनेक रूपों एवं प्रकारों में की गई है। भारतीय संस्कृति में दीपाग्नि, यज्ञाग्नि, सूर्याग्नि, पंचाग्नि इत्यादि के रूप में अग्नि उपासना, साधना एवं प्रार्थना आदि का विधान प्रचलित है। जो मनुष्य की मुक्ति का मार्ग बनता है। मुक्ति के मार्ग का विधान ही विद्या कहलाता है। इस प्रकार मुक्ति दिलाने वाली अग्नि को अग्निविद्या कहा जाता है। अग्नि से संस्कारित साधना, उपासना एवं आहार-विहार आदि अन्य कर्म योगियों की मुक्ति के लिए अत्यन्त सहायक हैं।

2. शोध-पत्र की आवश्यकता

अग्नि का प्रत्येक मनुष्य से किसी न किसी रूप में आजीवन सम्बन्ध होता है। दैनिक जीवन में प्रयुक्त अग्नि (लकड़ी या एल.पी.जी. गैस आदि से जलने वाली आग) के उपयोग से सभी परिचित हैं। मुख्यतः अग्नि से मनुष्य आहार का निर्माण करता है। आहर का मूल प्रयोजन शक्ति एवं ऊर्जा का निष्पादन करना है। अनेक साधक निराहार जीवन भी व्यतीत करते हैं, परन्तु फिर भी उनमें शक्ति एवं ऊर्जा की भरपूर मात्रा होती है। ऐसे साधक अपना आहार सूर्याग्नि से ग्रहण करते हैं। क्योंकि सूर्य ऊर्जा का मूल स्त्रोत है। सूर्य की प्रकाश किरणों में अग्नि व्याप्त है। इस प्रकार अग्नि किसी भी रूप में हो वह अनन्त शक्ति एवं रहस्यों से परिपूर्ण होती है।

साधना की दृष्टि से सम्पूर्ण वैदिक वाङ्मय में अग्नि की महिमा एवं अग्नि के साथ साधकों के सम्बन्ध का विस्तृत विवेचन किया गया है। चूंकि आज योग का युग है, योग भी एक साधना परक पद्धति है। अतः योग के साथ अग्नि उपासना अत्यन्त आवश्यक है। जिसकी मीमांसा इस शोध-पत्र में की गई है।

3. शोध-पत्र के उद्देश्य

1. वैदिक साहित्य में वर्णित ‘अग्नि’ एवं ‘अग्निविद्या’ के अर्थ एवं स्वरूप को जानना।
2. अग्निविद्या एवं योग के सम्बन्ध को जानना।
3. आरम्भिक योग साधना में अग्निविद्या की भूमिका को स्पष्ट करना।

4. अग्नि का स्वरूप

भारतीय संस्कृति में अग्नि को अलग-अलग रूपों में माना एवं पूजा जाता है। चूंकि भारतीय संस्कृति साधना परक संस्कृति है। इसके सम्पूर्ण विधानों में अग्नि का महत्वपूर्ण स्थान है। किसी भी शुभ कर्म का प्रारम्भ दीप प्रज्वलन के साथ होता है। षोडश संस्कारों में भी अग्नि का प्रमुख विधान संयुक्त है। यज्ञ, पूजन, पाठ आदि में कहीं न कहीं अग्नि का विशेष स्थान होता है। स्नान आदि के उपरांत सूर्य को **अर्घ्य** (*सूर्य देव सहस्त्रांशो तेजो वृद्धिं जगतपतिम्। अनुकम्पय माम् भक्त्यां ग्रहाणार्घ्यं दिवाकरः।। लौकिक सूर्यार्घ्य मन्त्र*) दिया जाता है, क्योंकि ***प्रश्नोपनिषद्*** के अनुसार- *स एष वैश्वानरो विश्वरूपः प्राणोऽग्निरूदयते। (प्रश्नोपनिषद्- 1/7)* सूर्यदेव ही वैश्वानर अग्निरूप, विश्वरूप एवं प्राणरूप होकर प्रकट होते हैं। ***तैत्तरीय ब्राह्मण*** (*सूर्योऽग्नेर्योनिरायतनम्। तैत्तरीय ब्राह्मण- 3/9/21/2*) में सूर्य को अग्नि का उत्पत्ति स्थल माना गया है। इसलिए सूर्य अथवा सविता देवता से प्रार्थना की जाती है-

आदितस्य नमस्कारान् ये कुर्वन्ति दिने-दिने।
आयुः प्रज्ञा बलं वीर्यं तेजस् तेषां च जायते।।

ऋग्वेद में अग्नि को देवता के साथ-साथ अनेक स्थानों पर एक ऋषि के रूप में भी वर्णित किया गया है। ***मैत्रायणी ब्राह्मण*** (1/6/1) में भी अग्नि को अनेक जगह ऋषि की संज्ञा से निरूपित किया गया है। ***अग्निर् ऋषिः।*** ऋग्वेद के **पुरूषसूक्त** (*मुखादिन्द्रश्चाग्नि। ऋग्वेद संहिता- 10/90/13*) में अग्नि की उत्पत्ति ‘विराट पुरूष’ के मुख से बताई गई है। ***ऋग्वेद*** (*द्विमाता शयुः कतिधा चिदायवे। ऋग्वेद संहिता- 1/31/2*) में अग्निदेव की दो माताएँ (ऊर्ध्व और अधो अरणियाँ) बताई गयी हैं। अग्निदेव को अन्य देवताओं का पिता कहा जाता है (*भुवो देवानां पिता पुत्रः सन्। ऋग्वेद संहिता- 1/69/1*), क्योंकि अग्निदेव अन्य देवों को हव्य द्वारा पोषण प्रदान करते हैं। मनुष्य यज्ञ कर्म से आहार रूपी हवि द्वारा देवताओं

को अपनी सूक्ष्म भावनाएँ प्रेषित करता है। यज्ञोत्पत्ति के मूल में अग्निदेवता ही हैं। ***ऋग्वेद संहिता*** (10/79/5) में अग्नि को सर्वदर्शा कहा गया है, जो मनुष्य के सभी कर्मों को देखती है। ***ऋग्वेद*** (*अग्ने त्री ते वाजिना त्री षधस्था तिस्रस्ते जिह्वा ऋतजात पूर्वीः। तिस्त्र उ ते तन्वो देववातास्ताभिर्नः पाहि गिरो अप्रयुच्छन्। ऋग्वेद संहिता- 3/20/2*) में अग्निदेव को तीन प्रकार के अन्न (घृत, औषधि और सोम), तीन प्रकार के निवास (पृथ्वी, अंतरिक्ष और द्यु), तीन प्रकार की जिव्हाएँ (गार्हपत्य, आहवनीय और दक्षिणाग्नि), तीन प्रकार के शरीर (पवमान, पावक और शुचि) से युक्त वर्णित किया है। जिस प्रकार- *ज्योतीरथं शुक्रवर्णं तमोहनम्।* (*ऋग्वेद संहिता- 1/140/1*) 'अग्नि के प्रभासित होते ही अन्धकार का अपनयन हो जाता है।' ठीक उसी प्रकार परम गुरू रूप अग्नि के साथ साधक के समस्त बन्धनों का अपनयन हो जाता है।

5. अग्नि का अर्थ

अग्नि इहलोक एवं परलोक के मध्य की कड़ी है। इसलिए अग्नि मुक्ति का मार्ग है। अग्नि गुरू एवं ज्ञान का प्रतीक है, प्रकाश एवं ऊर्जा का स्त्रोत है, अज्ञान एवं अंधकार का नाशक है। ***यजुर्वेद*** के अनुसार- *अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः स्वाहा अग्निर्वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा सूर्यो वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा। ज्योतिः सूर्यः सूर्यो ज्योतिः स्वाहा।* (*यजुर्वेद संहिता- 3/9*) 'अग्नि ही तेज, ज्योति, सूर्य है। अग्नि शब्द '***अगि गतौ***' धातु से निष्पन्न है। जिसके मूल में गति है, गति के तीन अर्थ ग्राह्य हैं- ज्ञान, गमन एवं प्राप्ति। अतः जहाँ भी ज्ञान, गति, ज्योति, प्रकाश, तेज, प्रगति एवं प्राप्ति है वहाँ अग्नि की ही व्याप्ति है। अग्नि ही वह माध्यम है जिससे देवता हवि के रूप में पदार्थ ग्रहण करते हैं।'

6. अग्नि के अन्य वाच्यार्थ

शतपथ ब्राह्मण (*स यदस्य सर्वस्याग्रमसृज्यत तस्मादग्निरग्निर्ह वै तमग्निरित्याचक्षते परोऽक्षम्। शतपथ ब्राह्मण- 6/1/1/11*) में सर्वप्रथम उत्पन्न होने के कारण अग्निदेव को 'अग्नि' कहा गया है। ***कविक्रतु*** (*ऋग्वेद संहिता- 1/1/5*) अग्नि क्रान्तिदर्शी, सूक्ष्मदर्शी है, ***पवमान*** (*यो वा अग्निः स पवमानः तदप्येतद् ऋषिणोक्तमग्निर्ऋषिः पवमान इतिः। ऐतरेय ब्राह्मण- 2/37*), ***जातवेद*** (*केनोपनिषद्- 3/4*), ***पुरोहित*** (*ऋग्वेद संहिता- 1/1/1*), *वैश्वानर* ***निरूक्त*** (*प्रत्यृतः सर्वाणि भूतानि, तस्य वैश्वानरः। निरूक्त- 7/6/21*) के अनुसार सभी प्राणियों में प्रविष्ट अग्नि को 'वैश्वानर' कहते हैं), आदि संज्ञाओं से अग्नि को अनेक ग्रंथों में वर्णित किया गया है। ***ऋग्वेद*** (*ऋग्वेद संहिता- 2/1/9*) में अग्नि को गृहपति भी कहा गया है। जिसका परिवार के सभी सदस्यों से घनिष्ठ सम्बन्ध बताया गया है। ***शतपथ बाह्मण*** (*गायत्री वाऽग्निः। शतपथ बाह्मण- 1/8/2/13*) में गायत्री को भी अग्नि कहा गया है। इन नामों के अतिरिक्त स्थिति एवं कर्मों के भेद से अग्नि को अलग-अलग नामों से उपन्यस्त किया गया है, जैसे- आपः, त्वष्टा, सूर्य, यज्ञ, अरणि, नराशंस, तनूनपात्, विश्ववेदा, विश्ववेदस्, रोहिताश्व, हिरण्यरेता, सप्तार्चि, सप्तजिव्हा, कवि, क्रव्यादग्नि, द्रविणोदा, पाप्मनाशन, सप्तजिव्ह, अर्वन्, प्रचेताग्नि, सत्यौजा अग्नि, सान्तपनाग्नि, जठराग्नि, दावाग्नि, बड़वाग्नि, त्रिणामा, पुरोगव आदि।

7. अग्नि के प्रकार

मुख्यतः तीन लोक हैं, प्रत्येक लोक में एक अग्नि प्रमुख है जैसे- आकाश में सूर्य, अन्तरिक्ष में विद्युत एवं पृथ्वी स्थानीय साधारण अग्नि। इस प्रकार लोक की दृष्टि से ***यजुर्वेद*** (*यजुर्वेद संहिता- 3/5*) भूः (पृथ्वीलोक में अग्निरूप), भुवः (अन्तरिक्षलोक में विद्युत् रूप) एवं स्वः (द्युलोक में सूर्यरूप) अग्नि की व्याप्ति वर्णित करता है। इस प्रकार अग्नि पृथ्वी स्थानीय देवता है। जिसके अन्य रूप अलग-अलग लोकों में हैं। अग्नि को मुख्य रूप से तीन रूपों में अभिहित किया जाता है- 1. गार्हपत्य 2. दक्षिणाग्नि 3. आहवनीय। ***कठोपनिषद्*** (*कठोपनिषद्- 1/3/14*) में अग्नि को पंचाग्नि कहकर अग्नि के पाँच प्रकारों की ओर संकेत किया है। ***पं. श्रीराम शर्मा आचार्य*** (शर्मा, आचार्य पं. श्रीराम. 2016, पृ. सं.- 60.) ने इस उपनिषद् के भाष्य में पंचाग्नि को गार्हपत्य, दक्षिण, आहवनीय, सभ्य और आवसभ्य नाम से वर्णित किया है। आयुर्वेद में धात्वाग्नि एवं जठराग्नि का वर्णन प्राप्त होता है। ***श्रीमद्भगवद्गीता*** (*अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः। प्राणापानसमायुक्तः पचाम्यन्नं चतुर्विधम्।। श्रीमद्भगवद्गीता- 15/14*) में भगवान श्रीकृष्ण वैश्वानर अग्नि (जठराग्नि) के रूप में मनुष्य देह में अपनी स्थिति बताते हैं।

8. अग्नि देवता की शास्त्रीय महिमा

अग्नि की महत्ता इसी बात से प्रमाणित होती है कि सर्व प्राचीन ग्रंथ ***ऋग्वेद*** (*ऋग्वेद संहिता- 1/1/1*) का पहला ही सूक्त अग्नि सूक्त है, जिसमें पहला मंत्र भी अग्नि (*अग्निमीले पुरोहितम्....*) शब्द से प्रारंभ होता है। ऋग्वेद में 200 से अधिक सूक्तों में अग्निदेव की स्तुति की गई है। ***यजुर्वेद*** (*अग्निर्देवता। यजुर्वेद संहिता- 14/20*) में भी अग्नि को देवता के रूप में माना गया है। ***सामवेद*** (*अग्निर्मूर्द्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या अयम्। अपां रेतांसि जिन्वति। सामवेद संहिता- पूर्वाचिके/1/3/7*) में अग्निदेव को द्युलोक से पृथ्वी पर्यन्त संव्याप्त जीवों का पालनकर्ता माना गया है। ***अथर्ववेद*** (*अथर्ववेद संहिता- 2/17*) में अग्नि को ओज, शौर्य, बल, जीवन आदि शक्तियों से सम्पन्न वर्णित किया गया है। ***ऐतरेय*** (*ऐतरेय ब्राह्मण- 1/1*) एवं ***शतपथ ब्राह्मण*** (*शतपथ ब्राह्मण- 1/4/4/0*) के अनुसार अग्नि में सभी देवताओं का वास माना जाता है। 'अग्नि सभी देवताओं की आत्मा है।' (*अग्निर्वे सर्वेषां देवानामात्मा। शतपथ ब्राह्मण- 14/3/2/5*) 'अग्निदेव सम्पूर्ण पापों के विनाशक हैं।' (*अग्निः सर्वेषां पाप्मामपहन्ता। शतपथ ब्राह्मण- 7/3/2/16*)

9. अग्निविद्या का अर्थ

अग्निविद्या शब्द दो शब्दों का योग है- अग्नि एवं विद्या। प्रथम शब्द (अग्नि) अखण्ड, प्रचण्ड, अनन्त, असीम शक्ति, सामर्थ्य, ओज, तेज, ऊर्जा एवं ऊष्मा का मूल स्रोत है। जिसमें सब कुछ पदार्थ जगत एवं क्लेश, कर्म, द्वेष, दुर्भाव आदि सूक्ष्म जगत को जलाकर भस्म कर देने का सामर्थ्य है। द्वितीय शब्द विद्या है जो मनुष्य को बन्धनों से मुक्त करती है। ***विष्णु पुराण*** (1/19/41) के अनुसार- 'विद्या वह है जो मुक्ति करे।' इस प्रकार अग्नि विद्या का अर्थ हुआ मुक्ति प्रापक वह विधा जिसमें समस्त बन्धनों को जलाकर भस्म करने की असीम शक्ति एवं सामर्थ्य आदि है, अर्थात् बन्धन मुक्ति की वह विधा जो दुःख के कारणभूत समस्त क्लेश, कर्म एवं संस्कार आदि का शमन कर साधक को असीम ओज, तेज, बल, विवेक, शक्ति, सामर्थ्य इत्यादि प्रदान करती है। ***कठोपनिषद्*** (1/1/16) में अग्निविद्या को नचिकेताग्निविद्या कहा गया है। "नचिकेत का अर्थ होता है 'न चिकेतते विचेष्टते' अर्थात् जो प्रपंच से अलिप्त है।" (शर्मा, आचार्य प. श्रीराम. 2016, पृ. सं.- 53) इस प्रकार अग्निविद्या समस्त प्रपंचों से मुक्त एवं समस्त प्रपंचों से मुक्ति प्रदान करने वाली विद्या है। ***बृहदारण्यक उपनिषद्*** (6/2/9-15) में द्युलोक, पर्जन्य (मेघ), पृथ्वी, पुरुष और स्त्री सम्बन्धी तात्विक ज्ञान को पंचाग्नि विद्या कहा गया है।

10. योग एवं अग्निविद्या का अन्तर्सम्बन्ध

योग एवं अग्नि का घनिष्ठ संबंध है, क्योंकि योग एक साधना पद्धति है; जो गुरू के सानिध्य में सम्पन्न होती है। साधना में ऊर्जा के उर्द्धगमन की प्रक्रिया निहित होती है। इस प्रकार साधना के लिए गुरू एवं ऊर्जा दोनों की आवश्यकता होती है। अग्नि गुरू एवं ऊर्जा दोनों का प्रतीक है।

गुरू एवं अग्नि दोनों का कार्य अज्ञान के अंधकार को समाप्त कर ज्ञान के प्रकाश को फैलाना है। गुरू का अर्थ ही अन्धकार का निरोधक होता है। ***द्वयोपनिषद्*** के अनुसार- *गुशब्दस्त्वन्धकारः स्याद् रूशब्दस्तन्निरोधकः। अन्धकारनिरोधित्वात् गुरुरित्यभिधीयते।।* (द्वयोपनिषद्- *4*) अर्थात्- 'गुरू शब्द में 'गु' का अर्थ अन्धकार और 'रू' शब्द का अर्थ उसका (अन्धकार का) निरोधक है। (अज्ञान के) अन्धकार को रोकने के कारण ही (अन्धकार रोकने वाले व्यक्ति को) गुरू कहते हैं।' शिष्य प्रतीक रूप में अपनी अविद्या, अज्ञान एवं संस्कार आदि की समिधा लेकर गुरू के पास जाता है, गुरू के सानिध्य में समिधा यज्ञाग्नि में समर्पित करता है। जिस प्रकार गुरू-शिष्य की अविद्या, अज्ञान आदि को समाप्त कर विद्या, ज्ञान एवं ऊर्जा का प्रकाश फैलाता है। उसी प्रकार अग्नि समस्त अच्छे-बुरे ईंधन को समाप्त कर ऊर्जा, ऊष्मा एवं प्रकाश को फैलाती है। इसीलिए अग्नि को गुरू कहा जाता है। जब साधक के पास कोई योग्य गुरू न हो तो अग्नि अथवा सूर्य को गुरू मानकर साधना प्रारम्भ करनी चाहिए। असत् से सत्, तमस् से प्रकाश, मृत्यु से अमरता की ओर गमन की प्रार्थना करनी चाहिए। जिसका वर्णन **बृहदारण्यकोपनिषद्** (*असतो मा सद्गमय तमसो मा ज्योतिर्गमय। मृत्युर्मा्म् अमृतं गमय।। बृहदारण्यकोपनिषद्- 1/3/28*) में किया गया है। मृत्युलोक से अमृतलोक अथवा स्वर्ग लोक इस अग्निविद्या के माध्यम से ही जाया जा सकता है। अग्नि से संस्कारित भोज्य पदार्थों के भी समस्त दोष समाप्त हो जाते हैं। अधिकांश लोग आज भी भोजन का पहला ग्रास अग्नि में समर्पित करते हैं। यह भी एक प्रकार का यज्ञ है।

अग्नि में समर्पित कर ग्रहण किया गया भोजन प्रसाद बन जाता है। ***श्रीमद्भगवद्गीता*** में जिसे कहा गया है- *यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः।* (*श्रीमद्भगवद्गीता- 3/13*) अर्थात्- 'यज्ञ से बचे हुए अन्न को खाने वाले श्रेष्ठ पुरूष सब पापों से मुक्त हो जाते हैं।'

इस प्रकार अग्नि से संस्कारिक साधक की साधना, उपासना, आहार, विहार एवं अन्य कर्मों के दोष समाप्त हो जाते हैं। इसलिए योग के साधकों को प्रत्येक दिन अग्नि की उपासना में रत रहना चाहिए। विपरीत परिस्थितियों को छोड़कर साधक को प्रत्येक दिन दीप, यज्ञ या सविता देवता (सूर्य देवता) से जुडकर अग्निविद्या की उपासना करनी चाहिए। आरम्भिक योग साधना में अग्नि की उपासना अत्यंत अनिवार्य है। आगे चलकर स्थूल साधनों अथवा पदार्थों का समस्त कार्य-व्यापार समाप्त हो जाता है, वहाँ केवल चेतना ही एकमात्र साधन और साध्य बन जाती है। अतः साधना की उच्चतर अवस्थाओं में इन यज्ञ, अग्नि आदि की आवश्यकता समाप्त हो जाती है। परन्तु आरम्भिक अवस्था में योग साधना के लिए अग्नि उपासना अत्यंत आवश्यक है।

11. अग्नि उपासना पद्धति

भारतीय संस्कृति में अग्नि उपासना की अनेक पद्धतियाँ प्रचलित हैं। चूंकि अग्नि का मूल स्त्रोत सूर्य है इसलिए भगवान सूर्य, अदिति, सविता देवता आदि संज्ञाओं से सूर्याग्नि को विभूषित कर सूर्योपासना की जाती है। सूर्यार्घ्य भी अग्नि उपासना का ही एक प्रकार है। ज्योतिष विद्या के अनुसार सूर्यग्रहण पर उपवास एवं सूर्यदेव का चिंतन, मनन, प्रार्थना आदि करनी चाहिए। जिसका प्रचलन भी समाज में बहुतायत है। इसी प्रकार पृथ्वी स्थानीय अग्नि देवता की उपासना भी भारतीय संस्कृति में अनेक संस्कार, समारोह आदि में अनेक प्रकार से प्रचलित है। कर्मकाण्ड साधना, उपासना आदि में भी दीप, यज्ञ, हवन जैसे विविध रूपों में अग्निदेवता से जुड़ा जाता है। इन प्रकार की अनेक पद्धतियों के माध्यम से अग्नि उपासना भारतीय संस्कृति में दृष्टिगोचर होती है। इस प्रकार की साधना, उपासना, समय, परिस्थिति एवं संयोग आदि के विशेष अवसर पर की जाती है। चूंकि इस प्रकार की पद्धतियाँ भी जीवन साधने, सवाँरने के लिए उत्तम हैं, परन्तु प्रतिदिन एक निश्चत समय एवं स्थान पर यथासम्भव अग्नि प्रज्जवलित कर गायत्री, प्रणव अथवा किसी भी मंत्र के जप की निश्चित आवृति अग्नि उपासना का सर्वोत्तम साधन हो सकता है। ***ब्रह्मविद्योपनिषद्*** (4-6) में अ, उ, म् का संबंध क्रमशः गार्हपत्य, दक्षिणाग्नि एवं आहवनीय अग्नि से बताया है। इस प्रकार अनेक ग्रंथों में अग्नि के साथ प्रणव जप का उल्लेख प्राप्त होता है।

कठोपनिषद् में अग्निविद्या की उपासना को स्वर्ग प्रदायिनी कहा गया है। ***कठोपनिषद्*** के अनुसार- *लोकादिमग्निं तमुवाच तस्मै या इष्टका यावतीर्वा यथा वा।* (*कठोपनिषद्- 1/15*)

अर्थात्- 'उस स्वर्गलोक की कारणरूपा अग्निविद्या का (यम ने) नचिकेता को उपदेश दिया। उसके कुण्ड निर्माण आदि के लिए जो-जो और जितनी ईंटें आदि आवश्यक हैं तथा किस प्रकार उनका चयन किया जाता है (वे सब बातें भी बतायीं)।' इस प्रकार के अग्निविद्या का निश्चित विधान करना चाहिए। जिसमें अग्नि अन्तःकरण के क्लेश, कर्म संस्कार आदि से मुक्ति का सामर्थ्य प्रदान करती है एवं प्रणव आदि का जप परम तत्व से तादात्म्य स्थापित करता है।

12. अग्नि उपासना के परिणाम

मुण्डक उपनिषद् में कहा गया है कि- *एतेषु यश्चरते भ्राजमानेषु यथाकालं चाहुतयो ह्याददायन्। तन्नयन्त्येताः सूर्यस्य रश्मयो यत्र देवानां पतिरेकोऽधिवासः।।* (*मुण्डक उपनिषद्- 1/2/5*) अर्थात्- 'जो पुरूष देदीप्यमान अग्नि की इन ज्वालाओं में यथा समय आहुतियाँ देता हुआ अग्निहोत्र कृत्य सम्पन्न करता है, उसे वे आहुतियाँ ही सूर्य रश्मियों के साथ देवाधिपति इन्द्र के पास (स्वर्ग में) ले जाती हैं।' इस प्रकार अग्नि का संबंध सूर्य से भी है। सूर्य सहस्त्र किरणों का पुंज है। जिसकी प्रत्येक किरण में असीम अग्नि, तेज, शक्ति एवं ऊर्जा सन्निहित होती है। योग साधना शक्ति एवं ऊर्जा के उर्द्धगमन की प्रक्रिया होती है। जिसके लिए असीम शक्ति एवं ऊर्जा के स्त्रोत का सानिध्य आवश्यक होता है। इसलिए भगवान सूर्यदेव (सविता देवता) को गुरू का प्रतीक मानकर उपासना की जाती है। **ईशावास्योपनिषद्** में सूर्यदेव से प्रार्थना की गई है-

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।

तत्त्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये।। *ईशावास्योपनिषद्- 15*

अर्थात्- 'सोने के पात्र से सत्य का मुख ढँका हुआ है। हे! पूषन् मुझ सत्यान्वेषण करने वाले के लिए उसे अपावृत करें- हटा दें।' गुरू ही वह शक्ति है जो अज्ञान, अविद्या आदि के आवरणों को हटा कर असीम ज्ञान के प्रकाश का दर्शन करा सकता है।

अग्नि के किसी भी रूप की साधना करते हुए अग्निदेव से प्रार्थना करनी चाहिए- *अग्ने नय सुपथा राय।* (*यजुर्वेद संहिता- 40/16*) 'प्रगति के सभी मार्गो (विधियों) को जानने वाले हे अग्निदेव! आप ऐश्वर्य की कामना करने वाले (हम) याजकों को श्रेष्ठ मार्ग पर ले चलें। सत्कर्म में बाधक पाप-वृत्तियों को हमसे दूर करें। हम नम्रता पूर्वक स्तुति करते हुए आपको हवि प्रदान करते हैं।' अग्नि तप है, तेज है, शक्ति है, सामर्थ्य है जो साधक के अविद्या एवं अज्ञान रूपी दुर्गुण, द्वेष, दुर्भाव को जलाकर भस्म कर देती है और साधक को योग की अग्नि में जलाकर योगाग्निमय कर देती है। ***श्वेताश्वतर उपनिषद्*** का इस सन्दर्भ में वर्णन प्राप्त होता है- *न तस्य रोगो न जरा न मृत्युः प्राप्तस्य योगाग्निमयं शरीरम्।* (*श्वेताश्वतर उपनिषद्- 2/12*) 'जिस साधक को योगाग्निमय शरीर प्राप्त हो जाता है, उसे न तो रोग होता है, न वृद्धावस्था प्राप्त होती है और न ही असामयिक मृत्यु प्राप्त होती है।'

13. निष्कर्ष

भारतवर्ष की साधना स्थली से उद्भूत समस्त विद्याएँ मुक्ति प्रापक हैं। मुक्ति दात्री विद्याओं में अग्निविद्या का प्रमुख स्थान है। मुक्ति का अर्थ मात्र पारमार्थिक जगत अथवा स्वर्गीय पद की प्राप्ति नहीं हैं अपितु शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक, बौद्धिक एवं आत्मिक प्रगति के मार्ग में आने वाले विक्षेप आदि को नष्ट कर दिव्य अन्तर्दृष्टि की प्राप्ति भी लौकिक जगत से मुक्ति और पारमार्थिक जगत की प्राप्ति है। प्रगति का तात्पर्य लौकिक एवं अलौकिक दोनों जगत की प्राप्ति से है। इस मार्ग में आने वाले व्यवधान निश्चित रूप से मनुष्य की सुषुप्त शक्ति, सामर्थ्य, ओज, तेज आदि का ह्रास कर जीवन की दिव्यता, पूर्णता, चैतन्यता एवं समग्रता की प्राप्ति का मार्ग अवरूद्ध कर देते हैं। अग्निविद्या की साधना, उपासना से व्यवधानों, विक्षेपों एवं क्लेशों के प्रभाव को क्षीण किया जा सकता है एवं जीवन की दिव्यता में श्रेष्ठ, ज्येष्ठ एवं यथेष्ठ शक्ति का वरण किया जा सकता है। अतः अग्निविद्या की उपासना मनुष्य की सम्पूर्ण सुषुप्त संभावनाओं, सृजनताओं एवं पूर्णताओं के समग्र विकास का महत्वपूर्ण साधन है। जिसका जीवन में समायोजन वर्तमान की आवश्यकता एवं भविष्य की पुकार है।

References

[1]. शर्मा, आचार्य प. श्रीराम. (2018), *ऋग्वेद संहिता (भाग- 1)., यजुर्वेद संहिता, सामवेद संहिता, अथर्ववेद संहिता (भाग- 1, 2).* गायत्री तपोभूमि, मथुराः युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट.

[2]. शर्मा, आचार्य प. श्रीराम. (2016), *108 उपनिषद्, प्रथम-ज्ञानखण्ड, द्वितीय-साधनाखण्ड, तृतीय-ब्रह्मविद्याखण्ड.* गायत्री तपोभूमि, मथुराः युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट.

[3]. शर्मा, डॉ. रेनू के. (2014), *शतपथ-ब्राह्मण में दार्शिनिक प्रतीक (विज्ञानभाष्य के आधार पर).* दिल्लीः विद्यानिधि प्रकाशन.

[4]. मालवीय, डॉ. सुधाकर. (2015), *ऐतरेयब्राह्मणम्.* वाराणसीः तारा प्रिंटिंग वर्क वाराणसी.

[5]. गोयन्दका हरिकृष्णदास. (2011), *श्रीमद्भगवद्गीता शांकरभाष्य हिन्दी-अनुवादसहित*, गीताप्रेस गोरखपुर.

[6]. पोद्दार, श्री हनुमानप्रसादजी और गोस्वामी, चिन्मयलालः अग्रवाल और शास्त्री, केशोराम. (सं. 2071), *कल्याण उपनिषद् अंक, (तेईसवें वर्ष का विशेषांक).* गोरखपुरः गीताप्रेस.

[7]. तीर्थ, श्रीस्वामी ओमानन्द. (2011), *पातंजलयोगप्रदीप.* गोरखपुरः गीताप्रेस.

[8]. सरस्वती, स्वामी निरंजनानंद. (2004), *योग दर्शन (योग औपनिषदीय दृष्टिकोण).* बिहारः योग पब्लिकेशन ट्रस्ट, मुंगेर.

[9]. व्याख्याकार आचार्य बदरीनाथ शुक्ल. (1999), *स्वामी सदानन्द प्रणीत वेदान्तसार.* दिल्लीः मोतीलाल बनारसीदास.

[10]. पुरी, डॉ. रामचन्द्र. (2021), *श्रीशंकराचार्यकृत प्रपंचसारतन्त्रम्.* नई दिल्लीः चैखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान.

Cite this Article:

डॉ. अखिलेश कुमार विश्वकर्मा एवं डॉ. उपेन्द्र बाबू खत्री, "अग्निविद्या की वैदिक मीमांसा: आरम्भिक योग साधना के परिप्रेक्ष्य में"*, Ved International Journal of Arts, Commerce and Technology (VIJACT), ISSN: 3139-1656 (Online), Volume 2, Issue 4, pp. 01-06, April 2026.*

Journal URL: https://vijact.com

DOI: https://doi.org/10.65785/vijact.v2i4.30